दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णीत: 10.10.2013

<u>नि.प्र.अ. (मु.प.) 36/2011, सि. वि. 19322/2011 (रोक के लिए)</u>

श्री सतीश कुमार झुनझुनवाला .....अपीलार्थी

द्वारा : श्री राकेश टिकू, वरिष्ठ अधिवक्ता, सह श्री अमित पाणिग्रही और श्री तुषार रॉय, अधिवक्तागण

बनाम

भारत संघ और अन्य ..... प्रत्यर्थीगण

द्वारा : भारत संघ की ओर से अधिवक्ता श्री जे.एम. कालिया।
प्रत्यर्थी संख्या 3 के अधिवक्ता श्री देबाशीष मोइत्रा

कोरमः
माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. रवीन्द्र भट्ट
माननीय न्यायमूर्ति श्री नजमी वज़ीरी

<u>न्यायमूर्ति श्री एस. रवीन्द्र भट्ट (खुला न्यायालय)</u>

1. यह सिविल प्रक्रिया संहिता ("*सि.प्र.सं.*") के आदेश XXI नियम 50 (2) के तहत डिक्री धारक द्वारा निर्णीत ऋणी की फर्म के भागीदारों के खिलाफ

निष्पादन कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने की अनुमति मांगने के आवेदन को अनुमति देने वाले आदेश के खिलाफ अपील है।

2. इस मामले में डिक्री और निष्पादन कार्यवाही के लिए अग्रणी तथ्य यह है कि 15.10.1986 को मेसर्स बिनोडे इंजीनियरिंग एंड मैकेनिकल वर्क्स, एक पंजीकृत फर्म, *("निर्णीत-ऋणी फर्म")* और भारत संघ के बीच 3850 टन कच्चा लोहा स्लीपर प्लेटों की आपूर्ति के लिए एक अनुबंध किया गया था। अनुबंध के निष्पादन के दौरान कुछ विवादों के कारण (जिनका विवरण निष्पादन कार्यवाही के इस चरण में प्रासंगिक नहीं है), मामले को 1996 में (दिनांक 21.12.1996 के पत्र के माध्यम से) मध्यस्थता के लिए भेजा गया था। 25.03.1998 को यह पंचाट डिक्रीधारक भारत संघ के पक्ष में 81,31,371/- रुपए (स्क्रैप के मूल्य के लिए 35,36,750/- रुपए तथा 01.09.1988 से 31.12.1996 तक स्क्रैप के मूल्य पर 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के लिए 45,94,621/- रुपए) तथा निर्णीत-ऋणी फर्म के विरुद्ध पारित किया गया। निर्णीत-ऋणी फर्म द्वारा उठाई गई आपत्तियों को खारिज करने के बाद, 15.03.2004 को सि.वा.(मु.प.) 815 क/1998 में माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 17 के तहत पंचाट को न्यायालय का नियम बना दिया गया था।

3. लगभग उसी समय जब पंचाट दिया गया, भागीदारों के बीच मतभेद के कारण निर्णीत-ऋणी फर्म निष्क्रिय हो गई। इसके बाद, भारत संघ ने इस न्यायालय के समक्ष निष्पादन मामला संख्या 119/2008 में अनुबंध पर

हस्ताक्षर के समय फर्म के स्वीकृत भागीदार सतीश कुमार झुनझुनवाला (याचिकाकर्ता/अपीलार्थी) के खिलाफ निष्पादन कार्यवाही शुरू करने की मांग की। इसके बाद श्री झुनझुनवाला की संपत्ति के विरुद्ध निष्पादन को सुगम बनाने के लिए इस मामले को दिनांक 17.04.2007 के आदेश द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय को भेज दिया गया। कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष श्री झुनझुनवाला ने दलील दी कि उनके खिलाफ कार्यवाही स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि वसूली केवल फर्म के खिलाफ ही हो सकती है, उसके भागीदारों के खिलाफ नहीं। इस बीच, निर्णीत-ऋणी फर्म द्वारा सि.प्र.सं. के आदेश XXI नियम 26 के तहत डिक्री पर रोक लगाने के लिए दायर एक आवेदन, नि.अ. संख्या 471/2008 को भी इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, भारत संघ ने श्री झुनझुनवाला की संपत्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने की अनुमति प्राप्त करके उनकी संपत्तियों के खिलाफ डिक्री को संतुष्ट करने के लिए इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश के समक्ष आदेश XXI नियम 50 (2) सि.प्र.सं. के तहत एक आवेदन दायर किया। एकल न्यायाधीश ने आदेश XXI नियम 50(2) के तहत अनुमति प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान अपील दायर हुई।

4. श्री झुनझुनवाला के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री राकेश टिकू ने तीन बार प्रस्तुति दी: पहला, चूंकि श्री झुनझुनवाला को न तो अंतर्निहित वाद (या तो मध्यस्थ अधिकरण के समक्ष या इस न्यायालय के समक्ष माध्यस्थम्

अधिनियम की धारा 14 के तहत पंचाट दाखिल करते समय) की सूचना दी गई थी और न ही निष्पादन कार्यवाही की, जब तक कि कार्यवाही कलकत्ता उच्च न्यायालय में नहीं पहुंच गई, इसलिए उनकी परिसंपत्तियों को उत्तरदायी बनाना, डिक्री में ही निराधार देयता बनाने के समान होगा, जो निष्पादन न्यायालय नहीं कर सकता। दूसरा, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि शब्द *"आदेश XXI के नियम 50 के उप-नियम (1) के खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ इस तरह के डिक्री को निष्पादित करें"* को खंड (ख) और (ग) में संदर्भित व्यक्तियों, यानी भागीदारों के विपरीत पढ़ा जाना चाहिए, और इस प्रकार, फर्म के भागीदारों को बिल्कुल भी संदर्भित नहीं करते हैं, बल्कि अन्य व्यक्तियों को संदर्भित करते हैं। अंत में, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि डिक्री अंतरित करने के बाद, अंतरणकर्ता न्यायालय, अर्थात् इस न्यायालय को कार्यवाही के संबंध में कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। श्री टिकू ने यह भी तर्क दिया कि नियम 50 में "*न्यायालय जिसने डिक्री पारित की*" शब्दों का उपयोग करते हुए उस न्यायालय की परिकल्पना की जिसने अंतर्निहित मामले की सुनवाई की और डिक्री (दायित्व की अभिव्यक्ति) पारित की, न कि उसी न्यायालय की, अर्थात इस न्यायालय की, जो अपनी निष्पादन शक्तियों में बैठा है। इस प्रकार, यद्यपि अनुमति मांगने वाला वर्तमान आवेदन दिल्ली उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश (वह न्यायालय जिसने इस मामले में मूल डिक्री भी पारित की थी) के समक्ष दायर किया गया था, तर्क यह है कि आवेदन उसी न्यायालय, यानी उसी पीठ या

न्यायाधीश के समक्ष होना चाहिए, जिसने अंतर्निहित मामले की सुनवाई की थी। इसके लिए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने पटना उच्च न्यायालय के निर्णय, *कालू राम एवं अन्य बनाम शिवानंद राय जोखी राम*, एआईआर 1932 पैट 323, और मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय, *पोट्टीस्वामी, पोट्टीस्वामी एवं ब्रदर्स के कथित भागीदार बनाम साल्ट सुलेमान* (मिट्टा), एआईआर 1942 मैड 501 पर भरोसा किया।

5. भारत संघ के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदन दायर करने की तिथि तक, 3,50,00,000/- रुपये से अधिक की राशि कानूनी रूप से डिक्रीत राशि के रूप में वसूली योग्य थी, और आज की तिथि में, यह राशि 5,00,00,000/- रुपये के करीब है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यद्यपि डिक्री को धारा 39, सि.प्र.सं. के अंतर्गत कलकत्ता उच्च न्यायालय को अंतरित कर दिया गया था, तथापि अंतरिती न्यायालय के रूप में यह न्यायालय धारा 42, सि.प्र.सं. के अंतर्गत फर्म के भागीदारों के विरुद्ध डिक्री को निष्पादित करने की अनुमति देने की शक्ति रखता है। तदनुसार, इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार स्थापित होता है। इसके अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि निर्णीत-ऋणी फर्म ने अनुबंध प्रदान करते समय रेलवे बोर्ड को दिनांक 11.05.1987 के पत्र के माध्यम से प्रस्तुत भागीदारी विलेख में भागीदार के रूप में अपीलार्थी/याचिकाकर्ता श्री झुनझुनवाला को नामित किया था। इसके अलावा, इसी प्रकार की शर्तों में, निर्णीत-ऋणी फर्म ने अपने पक्ष में दिए गए

अनुबंध के समय श्री झुनझुनवाला सहित सभी भागीदारों द्वारा निष्पादित एक सामान्य मुख्तारनामा दिनांक 13.10.1987 के एक पत्र में प्रस्तुत की थी। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि श्री झुनझुनवाला नियम 50 के उप-नियम (1) के विभिन्न उप-खंडों के अंतर्गत नहीं आते हैं, लेकिन भागीदार के रूप में उनका दायित्व, निर्णीत-ऋणी फर्म द्वारा स्वीकार किए गए दस्तावेजों के माध्यम से अनुबंध दिए जाने के साथ-साथ साबित होता है, यह मामला उनकी परिसंपत्तियों के खिलाफ कार्यवाही करने की अनुमति देने के लिए उपयुक्त है।

6. पक्षकारगण द्वारा उठाए गए तर्कों और चर्चा को संबोधित करने से पहले, सि.प्र.सं. के कुछ प्रावधानों को उद्धृत करना उपयोगी होगा। सबसे पहले, आदेश XXI नियम 50 पढ़ें:

> ***50. फर्म के विरुद्ध डिक्री का निष्पादन*** *(1) जहां डिक्री किसी फर्म के विरुद्ध पारित की गई है वहां निष्पादन-*
>
> *(क) भागीदारी की किसी सम्पति के विरुद्ध;*
>
> *(ख) किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध जो आदेश 30 के नियम 6 या नियम 7 के अधीन स्वयं अपने नाम में उपसंजात हुआ है या जिसने अपने अभिवचन में यह स्वीकार किया है कि यह भागीदार है या जो भागीदार न्यायनिर्णीत किया जा चुका है;*
>
> *(ग) किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध जिस पर समन द्वारा भागीदार के रुप में व्यक्तिगत तामील की गई है और जो उपसंजात होने में असफल रहा है, अनुदत्त किया जा सकेगा :*

परन्तु इस उपनियम की कोई भी बात '[भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) की धारा 30] के उपबन्धों को परिसीमित करने वाली या उन पर अन्यथा प्रभाव डालने वाली नहीं समझी जाएगी

(2) जहां डिक्रीदार डिक्री का निष्पादन किसी ऐसे व्यक्ति से भिन्न जो उपनियम (1) के खण्ड (ख) और (ग) में निर्दिष्ट है, किसी व्यक्ति के विरुद्ध उसके फर्म में भागीदार होने के नाते कराने का हकदार होने का दावा करता है वहां वह डिक्री पारित करने वाले न्यायालय से इस इजाजत के लिए आवेदन कर सकेगा और जहां ऐसे दायित्व के बारे में विवाद नहीं किया जाता है वहां ऐसा न्यायालय ऐसी इजाजत दे सकेगा या जहां ऐसे दायित्व के बारे में विवाद किया जाता है वहां आदेश कर सकेगा कि ऐसे व्यक्ति के दायित्व का विचारण और अवधारणा किसी ऐसी रीति से किया जाए जिससे वाद का कोई विवाद्यक विचारित और अवधारित किया जा सकता है।

(3) जहां किसी व्यक्ति के दायित्व का विचारण और अवधारण उपनियम (2) के अधीन किया गया है वहां उस पर किए गए आदेश का वही बल होगा और वह अपील के बारे में या अन्यथा उन्हीं शर्तों के अधीन रहेगा मानो वह डिक्री हो।

(4) भागीदार की किसी सम्पत्ति के विरुद्ध हुई डिक्री को छोड़कर, किसी फर्म के विरुद्ध डिक्री उस फर्म में के किसी भागीदार को तभी निर्मुक्त करेगी, दायी बनाएगी, या उसमें के किसी भागीदार पर प्रभाव डालेगी जब कि उपसंजात होने और उत्तर देने के लिए समन की तामील उस पर हो चुकी हो।

[(5) इस नियम की कोई बात आदेश 30 के नियम 10 के उपबन्धों के आधार पर किसी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के विरुद्ध पारित किसी डिक्री को लागू नहीं होगी ।]

7. धारा 37, सि.प्र.सं. इस प्रकार है:

> ***37. डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की परिभाषा-*** *जब तक कि कोई बात, विषय या संदर्भ में विरुद्ध में न हो, डिक्रियों के निष्पादन के सम्बन्ध मे "डिक्री पारित करने वाला न्यायालय" पद के या उस प्रभाव वाले शब्द के बारे में यह समझा जाएगा कि उसके या उनके अन्तर्गत-*
>
> *(क) जहां निष्पादित की जाने वाली डिक्री अपीली अधिकारिता के प्रयोग में पारित की गई है वहा प्रथम बार का न्यायालय आता है, तथा*
>
> *(ख) जहां प्रथम बार का न्यायालय विद्यमान नहीं रह गया है या उसे निष्पादित करने की अधिकारिता उसे नहीं रह गई है वहा वह न्यायालय आता है जो, यदि वह वाद जिसमें डिक्री पारित की गई है, डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन देने के समय संस्थित किया जाता तो ऐसे वाद का विचारण करने की अधिकारिता रखता।*
>
> *'[स्पष्टीकरण- प्रथम बार के न्यायालय की डिक्री का निष्पादन करने की अधिकारिता केवल इस आधार पर समाप्त नहीं हो जाती कि उस वाद के संस्थित किए जाने के पश्चात् जिसमें डिक्री पारित की गई थी या डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् उस न्यायालय की अधिकारिता से कोई क्षेत्र किसी अन्य न्यायालय की अधिकारिता में अन्तरित कर दिया गया है किन्तु ऐसे प्रत्येक मामले में, ऐसे अन्य न्यायालय को भी डिक्री के निष्पादन की अधिकारिता होगी यदि डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन करने के समय, उसे उक्त वाद का विचारण करने की अधिकारिता होती।]*

8. धारा 39, सि.प्र.सं. में प्रावधान है कि

39. डिक्री का अन्तरण: (1) डिक्री पारित करने वाला न्यायालय डिक्रीदार के आवेदन पर उसे 2[सक्षम अधिकारिता वाले अन्य न्यायालय को] निष्पादन के लिए भेजेगा-

(क) यदि वह व्यक्ति, जिसके विरुद्ध डिक्री पारित की गई है, ऐसे अन्य न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर वास्तव में और स्वेच्छा से निवास करता है या कारबार करता है या अभिलाभ के लिए स्वयं काम करता है; अथवा

(ख) यदि ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति जो ऐसी डिक्री की तुष्टि के लिए पर्याप्त हो डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर नहीं है और ऐसे अन्य न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर है; अथवा

(ग) यदि डिक्री उसे पारित करने वाले न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के बाहर स्थित स्थावर सम्पत्ति के विक्रय या परिदान का निदेश देती है; अथवा

(घ) यदि डिक्री पारित करने वाला न्यायालय किसी अन्य कारण से जिसे वह लेखबद्ध करेगा, यह विचार करता है कि डिक्री का निष्पादन ऐसे अन्य न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए।

(2) डिक्री पारित करने वाला न्यायालय प्रेरणा से उसे सक्षम अधिकारिता वाले किसी भी अधीनस्थ न्यायालय को निष्पादन के लिए भेज सकेगा।

[(3) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी न्यायालय को सक्षम अधिकारिता वाला न्यायालय समझा जाएगा यदि, उस न्यायालय को डिक्री के अन्तरण के लिए आवेदन करने के समय, ऐसे न्यायालय को उस वाद का विचारण करने की अधिकारिता होती जिसमें ऐसे डिक्री पारित की गई थी |] 2

[(4) इस धारा की किसी बात से यह नहीं समझा जाएगा कि वह उस न्यायालय को, जिसने डिक्री पारित की है, अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के बाहर ऐसी डिक्री को, किसी व्यक्ति या सम्पत्ति के विरुद्ध निष्पादन के लिए प्राधिकृत करती है ।]

9. धारा 42, सि.प्र.सं., जो इस अपील के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक है, इस प्रकार है:

> ***"42. अन्तरित डिक्री के निष्पादन में न्यायालय की शक्तियां-*** *'[(1)] अपने को भेजी गई डिक्री का निष्पादन करने वाले न्यायालय को ऐसी डिक्री के निष्पादन में वे ही शक्तियां होगी जो उसकी होंती यदि वह उसके ही द्वारा पारित की गई होती। वे सभी व्यक्ति, जो डिक्री की अवज्ञा करते है या उसके निष्पादन में बाधा डालते है, ऐसे न्यायालय द्वारा उसी रीति से दण्डनीय होंगे मानों डिक्री उसने ही पारित की हो और ऐसी डिक्री के निष्पादन में उसका आदेश अपील के बारे में उन्ही नियमो के अधीन रहेगा मानो डिक्री उसके ही द्वारा पारित की गई हो।*

'[(2) उपधारा (1) उपबन्धों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, उस उपधारा के अधीन न्यायालय की शक्तियों के अन्तर्गत डिक्री पारित करने वाले न्यायालय की निम्नलिखित शक्तियां होंगी अर्थात-

(क) धारा 39 के अधीन किसी अन्य न्यायालय को निष्पादन के लिए डिक्री भेजने की शक्ति;

(ख) धारा 50 के अधीन मृत निर्णीत-ऋणी के विधिक प्रतिनिधि के विरुद्ध डिक्री का निष्पादन करने की शक्ति;

(ग) डिक्री को कुर्क करने का आदेश देने की शक्ति।

(3) उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट शक्तियो के प्रयोग में आदेश पारित करने वाला न्यायालय उसकी एक प्रति डिक्री पारित करने वाले न्यायालय को भेजेगा।

(4) इस धारा की किसी बात से यह नही समझा जाएगा कि वह उस न्यायालय को जिसकी डिक्री निष्पादन के लिए भेजी गई है, निम्नलिखित शक्तियो मे से कोई शक्ति प्रदान करती है, अर्थात-

(क) डिक्री के अन्तरिती की प्रेरणा से निष्पादन का आदेश देने की शक्ति;

(ख) किसी फर्म के विरुद्ध पारित डिक्री की दशा में, आदेश 21 के नियम 50 के उपनियम (1) के खण्ड (ख) या खण्ड (ग) में निर्दिष्ट व्यक्ति से भिन्न किसी व्यक्ति के विरुद्ध ऐसी डिक्री के निष्पादन की इजाजत देनेकी शक्ति]

10. इस मामले में, "डिक्री पारित करने वाला न्यायालय" दिल्ली उच्च न्यायालय था, अर्थात वह न्यायालय जिसने विचाराधीन मध्यस्थता पंचाट को

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 17 के अंतर्गत न्यायालय का नियम बनाया। डिक्री के अनुसरण में निष्पादन कार्यवाही में, जिसे इस न्यायालय ने भी जब्त कर लिया था, मामले को धारा 39, सि.प्र.सं. के तहत अंतरित कर दिया गया था, यह देखते हुए कि डिक्री के निष्पादन में उपयोग की जाने वाली संपत्तियां कलकत्ता उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में स्थित थीं। हालाँकि, कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही में श्री झुनझुनवाला की देयता का प्रश्न सामने आया। माना कि, श्री झुनझुनवाला आदेश XXX के नियम 6 या 7 के तहत अपने नाम से उपस्थित नहीं हुए, न ही उन्होंने दलीलों पर ध्यान दिया, न ही उन्हें भागीदार के रूप में ठहराया गया, न ही कार्यवाही के किसी भी चरण में उन्हें भागीदार के रूप में सम्मन दिया गया। आदेश XXI, नियम 50 (1) के अधिदेश में स्पष्ट रूप से उनकी परिसंपत्तियों के विरुद्ध स्वतः वसूली को बाहर रखा गया है। बल्कि, निर्णय धारक भारत संघ को उप-नियम 2 के तहत अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता थी। यहां, श्री झुनझुनवाला का तर्क कि उप-नियम (2), यदि उप-नियम 1 के विरुद्ध पढ़ा जाए, तो फर्म के भागीदारों को संदर्भित नहीं करता है, बल्कि तीसरे व्यक्तियों को संदर्भित करता है, अस्वीकार्य है। उप-नियम 1 के खंड (ख) और (ग) भागीदारों की सभी श्रेणियों को शामिल नहीं करते हैं जिनके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है, अतः यह कहा जा सकता है कि उप-नियम (2) केवल तीसरे व्यक्तियों से संबंधित है। वास्तव में, खंड (ख) और (ग) केवल भागीदारों की कुछ श्रेणियों से संबंधित हैं, जिन्होंने या तो देयता स्वीकार कर ली है, या उन्हें नोटिस दिया

गया है और वे कोई जवाब देने में विफल रहे हैं, जिससे उनके खिलाफ कार्यवाही की जा सके। अन्य व्यक्तियों, या अधिक विशेष रूप से, अन्य भागीदारों पर उप-धारा में दिए गए तरीके से उनकी देयता स्थापित होने के बाद उप-नियम (2) के तहत कार्रवाई की जा सकती है। परिणामस्वरूप, श्री झुनझुनवाला का दूसरा तर्क भी खारिज हो जाता है, यानी यह देखते हुए कि वह मध्यस्थ अधिकरण या डिक्री देने वाले न्यायालय के समक्ष किसी भी कार्यवाही में पक्ष नहीं थे, उनकी परिसंपत्तियों के खिलाफ डिक्री को निष्पादित करना देयता बनाने के बराबर होगा, जो निष्पादन न्यायालय के लिए एक अनुचित गतिविधि है। न्यायालय की राय में, यह तर्क नियम 50 के मूल को भी नजरअंदाज करता है, जिसका आशय यह सुनिश्चित करना है कि यदि व्यक्तिगत भागीदार कार्यवाही में शामिल नहीं हैं, -जिस स्थिति में वे उप-नियम 1 के खंड (ख) या (ग) के अंतर्गत आएंगे, -तो उनकी परिसंपत्तियों का उपयोग अभी भी निष्पादन कार्यवाही में किया जा सकता है, यदि 'डिक्री पारित करने वाला न्यायालय' व्यक्ति को फर्म के साथ उसके संबंध के संबंध में उसकी देयता के प्रश्न पर सुनवाई के बाद अनुमति देता है। यह मामला वर्तमान में कार्यवाही के ठीक उसी चरण पर है, अर्थात यह निर्धारित करना कि क्या श्री झुनझुनवाला, निर्णीत-ऋणी फर्म और भारत संघ के बीच अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के समय भागीदार थे, ताकि - भागीदारी अधिनियम की धारा 25 में निर्धारित सामान्य सिद्धांत के अनुरूप - उन्हें व्यक्तिगत रूप से दायी बनाया जा सके। तदनुसार, जब तक कि डिक्रीधारक का यह दावा कि डिक्री भागीदारों

के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से पारित की जानी चाहिए, डिक्री देने वाले न्यायालय द्वारा डिक्रीधारक के विरुद्ध विनिश्चित न कर दिया गया हो, जिस स्थिति में निष्पादन न्यायालय स्वयं डिक्री पर लगाई गई सीमा से बंधा होता है और उसे भागीदारों के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से निष्पादित नहीं कर सकता, वही प्रश्न नियम 50(2) के अधीन आवेदन के माध्यम से उठाया जा सकता है। *(टोपनमल छोटामल बनाम कुंदोमल गंगाराम और अन्य एआईआर 1960 एससी 388 देखें।)*

11. इस संबंध में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अनुबंध प्रदान करते समय रेलवे बोर्ड को दिनांक 11.05.1987 के पत्र के माध्यम से निर्णीत-ऋणी फर्म द्वारा प्रस्तुत भागीदारी विलेख पर भरोसा किया, जिसमें श्री झुनझुनवाला को भागीदार के रूप में नामित किया गया है। इससे प्रासंगिक समय पर, अर्थात् अनुबंध पर हस्ताक्षर करते समय, उसकी देयता साबित हो गई, तथा यह अनुमति प्रदान करने के लिए पर्याप्त कारण है। न तो विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष, और न ही वर्तमान अपील कार्यवाही में श्री झुनझुनवाला ने इस दस्तावेज के संबंध में, या यहां तक कि सामान्य रूप से अनुबंध पर हस्ताक्षर करते समय उनकी भागीदारी और इस प्रकार, उनकी देयता के संबंध में कोई प्रश्न उठाया है।

12. बल्कि, श्री झुनझुनवाला द्वारा प्रस्तुत प्राथमिक तर्क यह है कि उप-नियम (2) के तहत अनुमति मांगने वाला वर्तमान आवेदन 'डिक्री पारित करने

वाले न्यायालय' के समक्ष नहीं किया गया है, और इस प्रकार, अनुचित तरीके से किया गया होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है। हालाँकि, यह तर्क प्रेरक नहीं है। जिस न्यायालय ने इस मामले में डिक्री पारित की वह माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 17 के तहत अपने मूल क्षेत्राधिकार में यही न्यायालय था। वर्तमान निष्पादन आवेदन इस न्यायालय के एकल न्यायाधीश के समक्ष दायर किया गया था। यह तर्क कि आवेदन के लिए उचित मंच इस न्यायालय का मूल पक्ष है जिसने डिक्री पारित की है, न कि इस न्यायालय की कोई अन्य पीठ जो निष्पादन के मामलों की सुनवाई करती है, एक गैर-मौजूद अंतर को रेखांकित करता है। उप-नियम (2) में केवल यह अपेक्षा की गई है कि आवेदन उस न्यायालय के समक्ष दायर किया जाए जिसने डिक्री पारित की है, तथा इसमें कोई और भेद नहीं किया गया है। यहाँ, आवेदन विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष किया गया था, जिस न्यायालय ने डिक्री पारित की थी, और निष्पादन की कार्यवाही से जब्त कर लिया गया था। इसके अलावा, यह दावा करना कि यह न्यायालय, डिक्री को अंतरित करने के बाद, अनुमति देने की शक्ति बरकरार नहीं रखता है, धारा 42 की स्पष्ट शर्तों के विपरीत है, जिसमें कहा गया है कि अंतरिती न्यायालय को आदेश XXI के नियम 50 के उप-नियम (1) के खंड (ख), या खंड (ग) में निर्दिष्ट व्यक्ति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के खिलाफ ऐसी डिक्री को निष्पादित करने की अनुमति देने की शक्ति प्राप्त नहीं होती है। बल्कि, अनिवार्यतः निहितार्थ यह रहना चाहिए कि ऐसी शक्ति उस न्यायालय के पास बरकरार रहती है जिसने 'डिक्री पारित की',

और इस मामले में, उस न्यायालय के पास, जिसने मामले को अंतरित किया, अर्थात यह न्यायालय। यहां कालू राम (पूर्वोक्त) और पोट्टीस्वामी (पूर्वोक्त) के निर्णयों पर भरोसा करना गलत है, क्योंकि उन मामलों में जिस न्यायालय में अनुमति मांगने के लिए आवेदन किया गया था, वह अंतरिती न्यायालय था, जो कि 'डिक्री पारित करने वाला न्यायालय' नहीं है [जैसा कि धारा 42(4)(ख) द्वारा स्पष्ट रूप से किया गया है] जो कि इस मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय है, न कि यह न्यायालय।

13. अपीलार्थी ने यह आग्रह किया था कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि उसे फर्म की देयता के लिए बाध्य किया जा सके, यह देखते हुए कि फर्म का पुनर्गठन हो चुका है। इस संबंध में, न्यायालय ने पाया कि इस तर्क की जांच विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा की गई थी, जिन्होंने अन्य निर्णीत ऋणी और फर्म की ओर से की गई उसी आपत्ति पर विचार किया था और माना था कि ऐसा कोई संकेत नहीं था कि 1992 का दस्तावेज, जिस पर इस संबंध में भरोसा किया गया था, कभी अधिसूचित किया गया था या डिक्री धारक भारत संघ को दिया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने भागीदारी अधिनियम की धारा 32(2) के प्रावधानों का उल्लेख किया, जो यह प्रावधान करता है कि *सेवानिवृत्त होने वाले भागीदार को उसकी सेवानिवृत्ति से पहले किए गए फर्म के कार्यों के लिए किसी तीसरे पक्ष के प्रति किसी भी देयता से मुक्त किया जा सकता है "उसके द्वारा ऐसे किसी तीसरे पक्षकार*

और पुनर्गठित फर्म के भागीदारों के साथ किया गया करार, और ऐसा करार ऐसे तीसरे पक्षकार और पुनर्गठित फर्म के बीच उस लेन-देन के क्रम से निहित हो सकता है, जिसके पश्चात उसे सेवानिवृत्ति का ज्ञान हो गया हो। यह न्यायालय विद्वान एकल न्यायाधीश के तर्क से पूर्णतः सहमत है, क्योंकि इस बात को प्रमाणित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि अपीलार्थी ने भारत संघ को कभी भी इस बारे में बताया था, और यह भी नहीं दर्शाया कि उसके साथ उसके आचरण से, व्यवस्था के बारे में उसकी जानकारी के बारे में किसी निहित समझौते का अनुमान लगाया जा सकता है। इसलिए, वह फर्म के कार्यों के लिए उत्तरदायी बना रहा, जिसके वह निस्संदेह भागीदार थे जब भारत संघ के साथ लेन-देन हुआ था, जिसके कारण उसकी (फर्म की) देयता उत्पन्न हुई, जो बाद में इस न्यायालय के आदेश में परिणत हुई।

14. उपर्युक्त कारणों के आलोक में, इस न्यायालय को विद्वान एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं दिखता। तदनुसार, अपील गुणागुण होने के कारण जुर्माने के संबंध में बिना किसी आदेश के खारिज कर दी जाती है।

एस. रवीन्द्र भट्ट
(न्यायाधीश)

नजमी वज़ीरी
(न्यायाधीश)

10 अक्टूबर, 2013

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*